Gyanvividha, Vol.-2; Issue-1 (January-March) 2025 : PP-226-230

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-1 (Jan.March) 2025
Page No.- 226-230
©2025 Gyanvividha
www.journal.gyanvividha.com

षामिला षाजी
शोधार्थी,
श्री शंकराचार्य संस्कृत
विश्वविद्यालय, कालडी.

Corresponding Author :

षामिला षाजी
शोधार्थी,
श्री शंकराचार्य संस्कृत
विश्वविद्यालय, कालडी.

जसिंता केरकेट्टा की कविताओं में आदिवासी प्रतिरोध

समकालीन आदिवासी कविता के क्षेत्र में कवयित्री जसिंता केरकेट्टा को महत्वपूर्ण स्थान है। जसिंता का जन्म 1983 में झारखण्ड में हुआ। वे हिंदी भाषा की पत्रकार, कवि और समाज कार्यकर्त्ता हैं। वे अपनी कविताओं द्वारा जल, जंगल, ज़मीन को संरक्षित करने के साथ आदिवासी अस्मिता को कायम रखने की कोशिश कर रही हैं।अब तक उनके चार कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं- 'अंगोर', 'जड़ों की ज़मीन', 'ईश्वर और बाज़ार' और 'प्रेम में पेड़ होना'। उनकी सभी कविताओं में आदिवासी समाज के सामने मौजूद सभी खतरे और संकट का दस्तावेज़ होने के साथ, इनके कारक शक्तियों के प्रति तीखा प्रतिरोध भी देखा जा सकता है।

जसिंता केरकेट्टा ने सामाजिक विडंबना को दिखाने के लिए कविता को माध्यम बनाया है। उसकी 'रोटी' कविता, प्रतीकात्मक कविता है। अपने देश के हर नागरिक को जीने की सुविधा बनाना वहाँ के सरकार का दायित्व है। राज्य सरकार एवं केंद्र सरकार द्वारा आदिवासी क्षेम के लिए अनेक योजनाएँ बनाए हैं। लेकिन ये सब कागज़ पर सिमट गया है। जसिंता की 'रोटी' कविता में रोटी उस सुविधा का प्रतीक है, जो आदिवासियों को कभी-कबार मिलता है। यदि सभी आदिवासियों को कुछ मामूली सुविधा मिलते हैं तो उनकी भूख की समस्या का हल एक हद तक मिट जाएगा।कविता में कवयित्री लिखती हैं कि- "थप्पड़ मारते हुए/ मुझे रोटी दी गई/ आँसू के घूँट के साथ/ हर निवाला मेरे गले से उतरा / और वे मंच से कहते हैं/ हमने तुम्हें रोटी दी।।"[1]

औपनिवेशिक सत्ता ने आदिवासियों के बीच धर्म का प्रचार शुरु किया।धर्म के प्रवेश के कारण आदिवासी समाज कई भागों में विभाजित हो गया।सामूहिकता की भावना कम होने कारण अन्याय के खिलाफ लड़ने की ताकत कम हो जाती है। समकालीन समय में शासन स्थापित करने किये भी धर्म का सहारा लिया गया है। वर्चस्ववादी विचारधारा के लोग देश में धर्म का

राजनीतिकरण करने लगे।धर्म के नाम पर विभाजित लोगों को लूट करना आसान है।इसलिए आदिवासी कविता ईश्वर की सत्ता का विरोध करती है।जसिंता केरकेट्टा की कई कविताओं में इसप्रकार की विरोध को देखा जा सकता है। 'आत्मरक्षा की ज़िम्मेदारी' नामक कविता में कवयित्री सांप्रदायिक भावना का विरोध इसप्रकार किया है कि-"उन्होंने अपना ईश्वर हमारी ओर बढ़ाया /कहा यह तुम्हें मुक्त करोंगे पापों से / हमने पुछा/ कौन-सा पाप किया है हमने?/ वे चकराए ....."[2] जसिंता की राय में आदिवासी समाज जाति से नहीं जाना जाता है, वह एक व्यवस्था है। यह एक अलग संस्कृति है, जिसकी कोई जाति नहीं होती।

आदिवासी संस्कृति तथाकथित मुख्यधारा समाज से भिन्न एक अलग संस्कृति है। वे प्रकृति के साथ मिल-जुलकर हमेशा रहते हैं। आदिवासी संस्कृति में जंगल का महतवपूर्ण स्थान है। वे प्राकृतिक संपदा के परिपालक हैं। उत्तर-औपनिवेशिक समय में कॉरपोरेट शक्तियाँ सत्ता की सहायता से प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन कर अपनी पूँजी बढ़ रहे हैं।इसी कारण आदिवासी लोग अपनी ज़मीन छोड़कर चलने के लिए विवश पड़ते हैं। आदिवासियों की ज़मीन उखाड़ने की दर्द पर कवयित्री लिखती हैं कि-"मैं कुरुआ में सोच रहा था,/ अचानक ज़मीन हिलने लगी/ देखा/ ज़मीन उखाड़ती मशीन के पंजों पर/ अपने खेत को/ उस टुकड़े के साथ,/मैं भी लटका था मशीन पर/ तब महसूस हुआ मुझे/अपनी ज़मीन सहित उखड जाने का दर्द/पहाड़ी बांसों का रहस्य'।"[3] कविता में आदिवासी ज़मीन छीन जाने की दर्द कवयित्री मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

'जब पेड़ उखड़ता है' जसिंता केरकेट्टा की महत्वपूर्ण कविता है।इस कविता 'प्रेम में पेड़ होना'संग्रह के एक कविता है।संग्रह की कविताएँ केवल दो व्यक्तियों के बीच होते प्रेम की कविताएँ नहीं है, ये कविताएँ उस प्रेम पर केन्द्रित हैं जिससे समग्र सृष्टि को संबल मिलता है। कवयित्री इस कविता संग्रह की कविताओं में आदिवासी जन की पीड़ा और प्रकृति के आर्तनाद को भी जगह दी है। जैसे-"एक पेड़ के उखड़ने से / पेड़ एक बार ही उखड़ता है /पर उससे जुड़ा आदमी / दो बार उखड़ता है /एक बार अपनी ज़मीन से /और दूसरी बार /अपनों की स्मृतियों के स्पर्श से ।"[4] इस कविता द्वारा कवयित्री आदिवासी और प्रकृति के बीच के प्रेम को अभिव्यक्ति देती हैं। आदिवासियों के लिए पेड़ माँ की तरह लगते हैं। पेड़ की पत्तियों पर चूमने तो अपनी माँ की हथेलियों पर चूमने -सा है।जंगल के हाथ पकड़कर ही आदिवासी पुरखे बड़े हुए हैं। ये जंगल आदिवासी पुरखों की स्मृतियों और स्पर्शों को बचाकर रखा है। इसलिए जंगल उखाड़ना आदिवासियों के अस्तित्व उखाड़ने के समान है। इस कविता में पारिस्थितिक शोषण करनेवाले बाहरी लोगों के खिलाफ कवयित्री का प्रतिरोध व्यक्त है।

जसिंता केरकेट्टा ने अपनी कविता में आम आदमी समाज में भोगनेवाले यथार्थ का वर्णन किया है। इसलिए उनकी कविता में भाषाई अस्तित्व का प्रसंग आना स्वाभाविक है।उनकी 'मातृभाषा की मौत ' कविता इसका ज्वलंत प्रमाण है। मातृभाषा की मौत, सोच की मौत है और सपनों की मौत हैं; क्योंकि हम अपनी मातृभाषा में सोचते हैं और सपना देखते हैं। आदिवासी भाषाओं का उपयोग केवल उनके बीच में किसी समाज विशेष में होता है। बाह्य समाज में उन्हें देश के अनुरुप भाषा बोलने की स्थिति है। धीरे -धीरे वे अपनी भाषा भूल जाती है। इस पर कवयित्री अपनी कविता में लिखती हैं-"मातृभाषा खुद नहीं मरी थी/उसे

मारा गया था/ पर,माँ यह कभी जान न सकी।"[5]

आदिवासियों का ही नहीं, बल्कि हर जीव की बुनियादी आवश्यकता है -भोजन। भोजन के लिए हम मेहनत करते हैं। जंगल के पुत्र आदिवासी लोग जंगल के संसाधनों से अपना जीवन यापन करते आ रहे थे। लेकिन आज वही जंगल उनके लिए रोका गया है। उन्हें जंगल का शोषक कहकर बाहर निकालने की कोशिश जारी है।इसलिए उनका जीवन संकट में पड़ा है। इससे आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में खतरा हुआ। आज आदिवासियों की मौत किसी बीमारी की वजह से मात्र नहीं, भूख के कारण भी हो रही है। जिन्दा रहने को भरपेट भोजन उनको प्राप्त नहीं है। मनुष्य मात्र नहीं, जंगली जानवर भी भूखमरी का शिकार बन रहे हैं। पेट की आग शांत करने के लिए ज़हरीली जड़ी-बूटियां खाने की स्थिति पड़ने पर आदिवासी मर जाते हैं। भूख के खिलाफ और इनके कारक शक्तियों के खिलाफ कवयित्री लिखती हैं कि-"तब एक दिन / उठती है कहीं/...../रोटी ए राख की महक /ओर बदल जाती है कविता में/कविता भूख की आग पर/ पकती हुई गुनगुनाती है,/ओर उठने लगती है एक साथ / कई घरों की आग/ भूख के सारे कारणों के खिलाफ।।"[6] आदिवासी लोगों के भोजन जैसी ज़रूरतों की पूर्ति जंगल पर निर्भर होती है। मगर आज एक ओर यह जंगल दिन व दिन घटती जा रही है तो दूसरी ओर जंगल से उन्हें बेदखल कर रहा है, तो वह अपनी पेट की आग कैसे बुझा सकता है? इसलिए भूख आग बनकर इसके कारणों को जलाने लगा है- ये आग है कविता। भूख आग बनकर कविता के रूप में बदल गया है।

विस्थापन आदिवासी समाज की मुख्य समस्या है। विस्थापन की पीड़ा सिर्फ उनसे कुछ छीन लेने से मात्र नहीं, बल्कि उन्हें धोखा देने का भी है।कोई प्रोजेक्ट के नाम पर ज़मीन लेने के लिए नौकरी, ढेर सारे पैसे, पुनर्वास, घर बनाने की सुविधा जैसे अनेक वादे देकर निरीह लोगों को अपने छल में फँसा देते हैं। मगर ज़मीन हासिल हो जाने के बाद इन वादों को आसानी से भूल जाती है। सदियों से वंचित जनता आज पहचान लिया है कि इन सत्ता और कोपरेट का लक्ष्य केवल मुनाफा है, इससे बढ़कर कुछ भी नहीं है। इस पहचान से प्रतिरोध की भावना लोगों में जाग गई। अपने जंगल से विस्थापित होकर किसी अनजान शहर में जीने के लिए आदिवासी जनता आज विवश हो गई है। वे नई संस्कृति को कभी भी अपनाना नहीं चाहते हैं, उसीप्रकार अपनी पुरानी संस्कृति से जुड़ भी नहीं सकते है। जैसे-"वे लौट जाना चाहती हैं/ अपनी घासों के पास,/कि वे जाना चाहती हैं/जीवित चारगाहों तक/जो अब भी कहीं उनके इंतजार में है/ कि वे गम हो जाना चाहती हैं/उन जंगलों में/ जहाँ पेड़ और पत्ते को बहुत होंगे/पर आदमी को न आती होगी/किसी आदमी को / पेड़ पर टांकने की कला।।"[7] विस्थापन की पीड़ा झेलनेवाले आदिवासी लोगों की दुःख कविता में व्यक्त है।

विकास के नाम पर अपनी पुश्तैनी ज़मीन एवं प्राकृतिक परिवेश से विस्थापित आदिवासी जनता का आक्रोश है 'ओ! शहर' कविता। जैसे-"भागते हुए छोड़कर अपना घर/ पुआल,मिट्टी और खपरे/ पूछते हैं अक्सर /ओ शहर / क्या तुम कभी उजड़ते हो/किसी विकास के नाम पर?"[8] मुक्त व्यापार और मुक्त बाज़ार के नाम पर मुनाफे बढ़ाने का खेल आदिवासियों के जल, जंगल और ज़मीन नष्ट करने का कारण बन गए।किसी शहर को या शहर के लोगों को कभी विकास के नाम पर नहीं उजाड़ा है। मगर आदिम जनता के साथ ऐसे क्यों हो रहा है?कवयित्री की इस सवाल प्रासंगिक है। कभी विकास के नाम पर किसी शहर को यानी शहर के लोगों को अभी तक उजड़ा नहीं है।आदिवासियों को विस्थापन के कारण अपना घर

छोड़कर जाने की संघर्ष कविता में स्पष्ट है। विस्थापन का विरोध कवयित्री ने तीखा शब्दों में अपनी कविता में किया है।

जसिन्ता केरकेट्टा की अन्य कविता 'हमारा हिसाब कौन देगा साब' में विस्थापन के प्रति विरोध कवयित्री इस प्रकार प्रकट करती हैं कि-" मंदिर,मस्जिद गिरजाघर टूटने पर / तुम्हारा दर्द कितना होता है/ कि सदियों तक लेते रहते हो उसका हिसाब /पर जंगल जिनका पवित्र स्थल है / उनको उजाड़ने का हिसाब, कौन देगा साब?.../वे जंगल को पूजते हैं, जंगल को जानते हैं /वहीं जीते हैं वहीं मर जाते हैं /तुम सब बूट पहनकर /उनके पवित्र स्थलों में कैसे घुस आते हो?/ विकास कह-कहकर जितने निर्दोष मारे हैं/ उन सबका हिसाब कौन देगा साब?"[9] कवयित्री की इन पंक्तियों में आदिवासी ज़मीन लूटनेवाले शक्तियों के प्रति प्रतिरोध व्यक्त है। इस कविता भारत,अमेज़न और दुनिया-भर में अपने जंगलों को बचाने के लिए संघर्ष करते आदिवासियों को समर्पित है। कविता द्वारा कवयित्री पूछती हैं कि किसी प्रत्येक धर्म के पवित्र स्थल टूटने पर सबको दर्द होता है और उसका हिसाब भी लेते रहते हैं। मगर आदिवासी अपने पवित्र स्थल मानते जंगल को उजाड़ने पर, विकास कहकर निर्दोष आदिवासियों को मारने पर, उन्हें वनवासी कहकर अछूत रखने पर किसीको दर्द नहीं होता है। इन सबका हिसाब कौन देगा? कविता की अंतिम पंक्तियों में कवयित्री लिखती हैं कि-"हम जीवन भर लड़ेंगे /तुम्हारी इसी संस्कृति के खिलाफ"[10] अपनी ज़मीन बचाने के लिए संघर्षरत आदिवासियों के प्रतिरोध इस पंक्तियों में व्यक्त है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया से एक समाज का उत्थान हुआ पर आदिवासी समाज अपने अस्तित्व के लिए जूझ रहा है। तथाकथित ठेकेदारों,पूँजीपतियों ने आदिवासी जनता के साथ अन्याय,शोषण,अत्याचार की नीति अपनाई, जिससे आदिवासी अस्मिता और संस्कृति का पतन हुआ।साथ ही साथ देश भर में आदिवासी महिलाओं की हालत बुरी होने लगी।इस समाज में जब बाहरी शक्तियों का आगमन शुरु हुआ तब से स्त्री जीवन संकट में पड़ गया। गाँव के निरीह लड़कियों को ये बाहरी शक्तियाँ अपनी वासना का शिकार बनाती हैं। जसिंता केरकेट्टा ने अपनी कविता में आदिवासी नारी की दुर्दशा का अंकन करने के साथ इसके प्रति अपना विरोध भी प्रकट किया है। जैसे-"ओ! जमुनी देखो/ तुम्हारा दर्द हर दिन अब/ सजा रहा ख़बरों का बाज़ार/.../पति से तुम्हारे पिटने की,/पडोसी के तुम पर दुष्कर्म की,/प्रेमी से मिले अनचाहे गर्भ की, होनेवाली तुम्हारी हत्या की/शोषण और उत्पीडन की/चटपटी,मसालेदार बनाकर ख़बर/तुम्हारा दर्द का हो रहा व्यापार"[11] जसिंता की इस कविता में अदिवासी स्त्री की सामाजिक हैसियत का वास्तविक तस्वीर दिखाया है। इन स्त्रीयों के दर्द ख़बर बनाकर देश-देश में बिक रहे हैं। कविता के जमुनी केवल आदिवासी स्त्री का नहीं, बल्कि दुनिया के हर स्त्री के प्रतिनिधि है।

आदिम जनता का इतिहास सदियों पुरानी संघर्षों का इतिहास है। अपने ऊपर हो रहे अन्याय के विरुद्ध यह जनता सदियों से लड़ रही हैं। वह लड़ाई आज भी जारी है। लेकिन आदिवासी संघर्षों के इतिहास को उचित सम्मान और गौरव कभी भी नहीं मिला। वे अपने अतीत के इतिहास पर गर्व करना चाहते हैं। वह हमेशा चाहता हैं कि,'उन्हें अपने इतिहास के साथ याद करें'। जसिंता ने अपनी कविता में कई बार आदिवासी पुरखों को स्मरण किया है। अपना इतिहास छीननेवालों पर कवयित्री का आक्रोश 'अतीत की अस्थियाँ' कविता में देख सकते हैं।जैसे-"अगर छीन लिया जाए/उससे उसका अतीत/काट दी जाएँ, जड़ें समय की/वह छटपटाकर दम तोड़ देगा,.../"[12]

समकालीन आदिवासी कविता में आदिवासी पहचान को लेकर रचनाएँ हुई हैं। पहचान अर्थात अस्मिता नष्ट करना मरने की बराबर है।कवयित्री जसिंता केरकेट्टा 'मैं देशहित में क्या सोचता हूँ' कविता में लिखती हैं-"मैं तो दलितों को जाहिल /और आदिवासियों को जानवर समझता हूँ / मुस्लिम और इसाई को देशद्रोही /और इस देश से इन सबकी सफाई चाहता हूँ"[13] कविता में सभ्य कहे गए लोगों को अल्पसंख्यकों के प्रति नफ़रत की दृष्टिकोण व्यक्त है। आदिवासियों को मानव के रूप में कभी नहीं देखा है।आदिवासियों को जानवर के रूप में देखते हैं।इसलिए उन्हें 'जंगली','वनवासी' आदि कहकर अवहेलना करते हैं। इस प्रकार आदिवासी और अल्पसंख्यक लोगों को निंदा से देखते समाज के खिलाफ कवयित्रियों ने आवाज़ उठाई हैं।

आदिवासी समाज की संघर्ष गाथा एवं प्रतिरोध को स्पष्ट रूप में जसिंता ने अपनी कविता में चित्रित किया है।तथाकथित मुख्यधारा समाज के शोषण के खिलाफ लड़ने का आह्वान कवयित्री अपनी कविता द्वारा देती है। इतिहास से वंचित आदिवासी जनता का इतिहास आदिवासी स्वयं लिखने की प्रेरणा भी वह देती हैं। आदिवासी समाज की हर समस्याओं से मुक्ति की आशा कविता में भरी हुई हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. 'जड़ों की ज़मीन', जसिंता केरकेट्टा, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2018, पृ.सं.-146.
2. 'ईश्वर और बाज़ार', जसिंता केरकेट्टा, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2022, पृ.सं.-19.
3. 'अंगोर', जसिंता केरकेट्टा, अदिवाणी, कोलकत्ता, 2016, पृ.सं.-86.
4. 'प्रेम में पेड़ होना, जसिंता केरकेट्टा, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2024, पृ. सं.-38.
5. 'जड़ों की ज़मीन', जसिंता केरकेट्टा, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2018, पृ.सं.-20.
6. 'अंगोर', जसिंता केरकेट्टा, अदिवाणी, कोलकत्ता, 2016, पृ.सं.-42.
7. 'जड़ों की ज़मीन', जसिंता केरकेट्टा, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2018, पृ.सं.-49-50.
8. 'अंगोर', जसिंता केरकेट्टा, अदिवाणी, कोलकत्ता, 2016 ,पृ.सं.-30.
9. 'ईश्वर और बाज़ार', जसिंता केरकेट्टा, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2022 , पृ.सं.-15.
10. वही, पृ.सं.-16.
11. 'अंगोर', जसिंता केरकेट्टा, अदिवाणी, कोलकत्ता, 2016, पृ.सं.-130.
12. 'जड़ों की ज़मीन', जसिंता केरकेट्टा, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2018, पृ.सं.-64.
13. 'ईश्वर और बाज़ार', जसिंता केरकेट्टा, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2022, पृ.सं.-38.

•